National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 1341-1343

मीरा की साधना पर अभिव्यक्ति

अनुपम शर्मा[1], डॉ0 तबस्सुम खान[2]

[1] शोधकर्त्ता, श्री सत्य साई विश्वविद्यालय ऑफ टेक्नौलाजी एण्ड मेडिकल साइन्सेस, सीहोर, मध्य प्रदेश, भारत।

[2] शोध निर्देशक, श्री सत्य साई विश्वविद्यालय ऑफ टेक्नौलाजी एण्ड मेडिकल साइन्सेस, सीहोर, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

हिंदी के वास्तविक और सशक्त स्त्री काव्य का आरंभ मीराबाई की कविता से होता है। उनकी कविता में स्त्री की आत्मा की ऐसी आवाज सुनाई पड़ती है जो पराधीनता के बोध से बेचैन और स्वाधीनता की आकांक्षा से प्रेरित स्त्री की आवाज है। जिसे आजकल स्त्री चेतना कहा जाता है उसकी सशक्त अभिव्यक्ति पहली बार हिंदी में मीरा के काव्य में मिलती है। मीरा का समय, उस समय के समाज, उसकी सामाजिक सांस्कृतिक बनावट और मीरा के परिवार को ध्यान में रखिए तो उनके जीवन–संघर्ष और आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के महत्व का वास्तविक बोध होगा।

मूल शब्द : सशक्त स्त्री काव्य, पराधीनता के बोध, सांस्कृतिक बनावट।

प्रस्तावना

चन्द्रा सदायत का यह कथन पल्लव द्वारा सम्पादित पुस्तक मीराएक पुनर्मूल्यांकन से लिया गया है। मीरा को भक्त कवयित्री के रूप में देखे जाने की परम्परा रही है किन्तु यह पुस्तक मीरा का एक नयी दृष्टि से मूल्यांकन करने का प्रयास करती है जिसमें मीरा को भक्त से अधिक सशक्त स्त्री कवि के रूप में देखने की जिद है। पुस्तक में नये और पुराने आलोचकों के विभिन्न आलेख लगभग इसी स्वर की पुष्टि करने वाले हैं। चन्द्रा सदायत का यह आलेख वस्तुतः मीरा को स्त्री काव्य की पुरोधा के रूप में प्रतिष्ठित करने का उपक्रम कहा जायेगा। चन्द्रा सदायत आगे लिखती हैं कि हिंदी के पाठ्यक्रमों में मीरा की स्थिति हिंदी समाज में स्त्री की स्थिति और पितृसत्तात्मक मूल्यों के वर्चस्व की दृष्टि का द्योतक है।

यह एक लम्बी बहस का ही हिस्सा माना जायेगा कि पाठ्यक्रम की राजनीति में मीरा या कबीर के साथ कितना न्याय या अन्याय हुआ है। यहाँ मीरा के बहाने स्त्री और दलित प्रश्न फिर से प्रगतिशील आलोचना के समक्ष चुनौती के रूप में आते हैं। यह पुस्तक दरअसल मीरा के व्यक्तित्व और उनकी कविता पर पड़े विभिन्न भक्ति के आवरणों को हटाकर आधुनिक आलोक में मूल्यांकन का प्रयास है। पुस्तक में संकलित एक आलेख मीरा के अध्यात्म का समाजदर्शन और समाजदर्शन का अध्यात्म में सुधा चौधरी ने लिखा है कि विद्रोही मीरा जिस घृणित भाव से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पराधीन मूल्यों को चुनौती देती है उतनी ही परिपक्वता, समझ एवं सम्पूर्णता के साथ अध्यात्म के तात्विक मर्म का उद्घाटन करती है। यह उसके व्यक्तित्व की सकारात्मक रचनाशीलता एवं वैचारिक गहनता का परिचायक है। अध्यात्मवादी जीवन दर्शन परम सत्ता को निर्गुण, निराकार, निर्विशेष एवं अद्वैत रूप में मण्डित करता है। मीरा के भावपक्ष को देखकर लगता है कि उसने जगत के मिथ्यातत्व एवं संबंधों में स्वार्थपरकता को कितनी बारीकी से भेदा है। ठीक इसी तरह वरिष्ठ समालोचक रामचन्द्र तिवारी ने अपने आलेख श्भक्ति आंदोलन की मूल प्रकृति और मीरा की कविताष् में मीरा को मध्यकालीन भक्त साधकों की परम्परा में देखते हुए मीरा की काव्य भूमि को अधिक महत्व दिया है।

उनका मानना है कि मीरा का दर्द औरों से अलग है, वैसे ही उनकी काव्य–भूमि भी अन्यों से भिन्न है। दरबारी कविता का तो कहना ही क्या अन्य संत और भक्त कवियों से भी कुछ अलग दिखाई पड़ती हैं। न तो कबीर की भांति हिंदू–मुसलमान और पंडित–मुल्ला से समान दूरी बनाए रखने की प्रतिज्ञा से बंधी है, न जायसी की तरह पंडितों के पीछे चलने की इच्छा से। उन्होंने किसी तरह के आवरण में अपने को छिपाया नहीं है। लोक–भूमि से जुड़कर अपनी भावनाओं का उद्रेक ही उन्हें प्रिय है। इस भूमि पर सबसे गाढ़ है नारी की विवशता का इजहार करती मीरा की मर्म–पीड़ा।

साहित्य की समीक्षा

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में तो किसी कवयित्री का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन भक्ति आन्दोलन के साथ ही 'मीरा' का सशक्त स्त्री–स्वर सुनाई पड़ने लगता है। कबीर, सूरदास, तुलसीदास जैसे महाकवियों के इस युग में मीराबाई का अपना एक विशिष्ट स्थान है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। जैसा कि कहा जाता है साहित्य में समाज की पुनर्रचना होती है। साहित्यकार अपने जीवनानुभावों को साहित्य में अभिव्यक्त करता है। साथ ही वह समाज में आ गयी विकृतियों एवं इनके समाधान को भी अपने साहित्य में देने की कोशिश करता है। इसी तरह मीरा ने भी अपनी कविताओं में 'स्व' के माध्यम से स्त्री संघर्ष को उद्भाषित किया है। वे तत्कालीन समाज की उन स्त्रियों को वाणी प्रदान करती हैं जो पराधीनता की बेडियाँ तोड़कर, स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहती है। वे युगों से चलती आयी रूढिवादी परम्पराओं का खुलकर विरोध करती हैं। राजघराने से सम्बन्धित होने के बावजूद भी मीराबाई इसके वैभव की ओर आकर्षित नहीं होती, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अपने प्रिय स्वजनों को भी छोड़ने में कोई हिचक महसूस नहीं हुई है। वस्तुतः इसी ने ही उनके व्यक्तित्व को दृढ़ता प्रदान की है। विश्वनाथ त्रिपाठी भी लिखते है कि "तुलसी क्या, कबीर और सूर की अपेक्षा भी मीरा का रचना–संसार सीमित है। किन्तु वह किसी की अपेक्षा कम विश्वसनीय नहीं। इसका कारण यह है कि मीरा ने नारी जीवन के वास्तविक अनुभवों को शब्दबद्ध किया है।

लेकिन जिस प्रकार निराला की 'सरोज–स्मृति' उन हजारों–लाखों

लोगों की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है जिनकी संतानें अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गयी और दलित लेखकों–दया पवार की 'बलूत' (अछूत), शरणकुमार लिबांले की 'अक्करमाशी', मोहनदास नैमिशराय की 'अपने–अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', श्यौराज सिंह 'बेचौन' की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया' व 'मणिकर्णिका' आदि आत्मकथाएँ स्वयं के अनुभवों पर आधारित होते हुए भी प्रत्येक दलित के शोषण की कहानी कहती हैं, उसी प्रकार मीरा का काव्य भी हरेक स्त्री के कष्टों को उजागर करता है। उनकी आपबीती जगबीती बन गयी है। मीरा का विद्रोह हर उस स्त्री का विद्रोह है जो आज भी स्वतंत्रता के लिए विकल्प की खोज में संघर्षरत है। अतः कह सकते हैं कि मीरा एक सफल स्त्री विमर्शकार है जो प्रत्येक स्त्री को उसके अस्तित्व से अवगत करवाती है तथा समाज व परिवार में उसके महत्त्व को बढ़ाती है।

मीरा की साधना पर अभिव्यक्ति

मीरा के जीवन में अनेक जटिलताएँ विद्यमान थी। राजकुल की बेटी एवं बहू होने की वजह से उन्हें सामन्ती समाज द्वारा अमानवीय पीड़ा सहनी पड़ी। उनकी कविता में एक ओर सामन्ती समाज में स्त्री की पराधीनता और यातना का बोध है तो दूसरी ओर उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह से निषेध और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है। उस युग में एक स्त्री के लिए ऐसा संघर्ष अत्यंत कठिन था। लेकिन मीरा ने अपने स्वत्व की रक्षा के लिए कठिन संघर्ष किया।

उस समय की प्रथानुसार पति के मर जाने पर स्त्री अपने पति की चिता के साथ सती हो जाती थी। तत्कालीन व्यवस्था में सती प्रथा की अमानवीयता को महसूस न करके इसे स्त्री के त्याग व बलिदान से जोड़ा जाता था। मीरा ने पति की मृत्यु के बाद इसी क्रूर व्यवस्था को अपनाने से मना कर दिया। वे विधवा होने के बाद भी कुल की रीति नहीं अपनाती–

"गिरधर गास्यां सती न होस्यां
मन मोह्यो धन नामी।।

मीरा ने सती होने की जगह भक्ति का मार्ग चुना। वे जानती थीं समाज उनकी बात को आसानी से नहीं स्वीकारेगा इसलिए उन्होंने कृष्ण को पति (अवलम्ब) मानकर स्वयं को सुहागिनी घोषित कर दिया–

"काजल टीकी हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बांधन जूड़ो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो छै पूरो।।"

मीरा के इस क्रान्तिकारी कदम ने उस पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था पर गहरा आघात किया जिसमें स्त्री का अस्तित्व सिर्फ पुरुष के साथ ही था। उन्होंने स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में बराबरी की मांग की. वे स्त्री को पुरुष निरपेक्ष करना चाहती थीं। वे चाहती थीं कि जिस प्रकार पुरुष स्वयं अपने निर्णय लेता है उसी प्रकार स्त्री भी स्वयं अपने निर्णय ले। स्त्री के ऊपर से पुरुष (पिता, भाई, पति व बेटे) का आधिपत्य समाप्त हो। इस कारण उन्होंने लगातार अनेक यातनाएँ एवं लांछन सहे, पर वह अपने पथ पर अडिग रही। सामन्ती समाज के बदनामी के हथियार से भी मीरा दबी नहीं। उन्होंने समाज व परिवार द्वारा बनाई गई लक्ष्मण रेखा (स्त्रिोचित मर्यादा) को पार कर अपने आलोचकों को चुप करवा दिया–

"राणाजी म्हाने या बदनामी लगे मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूंगी चाल अपूठी।
सांकडली सेर्यां जन मिलिया क्यूं कर फिरूं अपूठी।
सत संगति मा ग्यान सुणै छी, दुरजन लोगां ने दीठी।
मीरां रो प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अंगीठी।।"

मीरा अपने विरोधियों को चुनौती देती है। वे कहती हैं कि कुल मर्यादा और लोकलाज के नाम पर मैं अपनी स्वतंत्रता का हनन नहीं होने दूँगी। अगर तुम्हें मेरी आस्था या संकल्प से कोई परेशानी है तो तुम अपने घर में पर्दा कर लो। ये अबला इस पुरुषप्रधान समाज के अत्याचार नहीं सहेगा।

"लोकलाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।
अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।।

मीरा के लोकलाज त्यागने पर पितृसत्तात्मक समाज को समस्या होनी ही थी। जहाँ पर्दे या घूँघट का चलन वर्तमान में भी विद्यमान है, वहाँ मध्यकालीन समय में स्त्री द्वारा सब बंधन तोड़ना तत्कालीन समाज के लिए तो असहनीय होगा। लेकिन मीरा की कोई निन्दा करे, उन्हें भला–बुरा कहे इसकी उन्हें कोई प्रवाह नहीं है। सास–ननद उनसे लड़ती है, उन्हें जली–कटी बातें सुनाती है, ताले में बंद कर उनके आवागमन पर रोक भी लगा दी गयी है–

"हेली म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाय।
सास लड़ै मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरे भी राख्यो चौकी बिठार्यो, तालो दियो जड़ाय।"

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि समाज में फैली कुरीतियों को कुछ महिलाओं का भी समर्थन प्राप्त है। शायद इसी कारण आज भी कई रूढियाँ हू–ब–हू हमारे समाज में अपनी जड़ जमाए हुए हैं। मीरा ने अपने पदों में कई बार सास–ननद द्वारा स्वयं को सताए जाने का जिक्र किया है। ये पद इस ओर इशारा करते हैं कि 'स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है। यह बात सास–बहू या ननद–भाभी के सम्बन्धों पर तो काफी हद तक सटीक बैठती है। ऐसा नहीं है कि इन सम्बन्धों में प्रेम विद्यमान नहीं होता लेकिन इनका कलह ही ज्यादा प्रसिद्ध है। परिजन ही क्या अन्य लोग भी मीरा को कड़वे बोल बोलते हैं। उनकी हंसी उड़ाते हैं–

"कड़वा बोल लोग जग बोल्या, करस्यां म्हारी हांसी।"
या
"आंबां की डालि कोइल इक बोले, मेरो मरण अरु जग केरी हांसी।"

मीरा एक सामान्य विधवा स्त्री की तरह घर की चारदीवारी में जीवन व्यतीत नहीं करना चाहती थी। वह साधुसंगति तथा कृ ष्णभक्ति करना चाहती थी. भक्ति करना कोई पाप नहीं है। परन्तु मीरा का यह आचरण उनके देवर 'राणा' को कदाचित् पसंद नहीं था। कुल की मर्यादा भंग होने के नाम पर उन्हें तरह–तरह से प्रताडित किया गया। यहाँ तक कि उन्हें मारने के लिए कभी विष का प्याला भेजा गया, तो कभी पिटारी में सांप भेजा गया–

"सांप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय–धोय कर देखण लागी, सालिगराम गई पाय।।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन बनाय।
न्हाय–धोय कर पीवण लागी, हो अमृत अंचाय।।

सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
सांझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।।"

उपसंहार

मीरा के ये पद इस बात के साक्ष्य हैं कि उन्हें न सिर्फ स्वजनों द्वारा बल्कि समाज द्वारा भी कितनी ही कठोर यातनाएँ सहनी पड़ी है। लोक, समाज, राज परिवार आदि ने मीरा के प्रति जो क्रूरता बरती, उसका संबंध हमारी उस सामाजिक संरचना से है, जिसके तहत जीवन–व्यवहार, मर्यादाओं तथा कर्त्तव्यों के नाम पर स्त्री के लिए एक नरक रचा गया है। थोड़े–से सुभाषितों की आड़ में आजन्म पराधीनता की एक नियति उसे दी गई है। स्त्री के वजूद को पूरी तरह नकारा गया है। उसे तरह–तरह से जंजीरों में बाँधा गया हैपर मीरा स्त्री जीवन के विकास का पथ–प्रर्दशन करती है। वे स्त्री को संकीर्ण बन्धनों को त्यागकर मुक्त वातावरण में विचरण करने का संदेश देती हैं। साथ ही वे अपनी क्रांतिकारी भावनाओं और चिन्तन के माध्यम से जन–मन की गहराइयों में उतरने में सफल हुई हैं।

जब मध्यकालीन समाज में स्त्री को अपने विचारों को व्यक्त करने तक की छूट प्राप्त नहीं थी तब प्रेम करने की बात तो स्त्री सोच भी नहीं सकती थी। मीरा स्त्री को इसी दासता और मजबूरी से मुक्त करती है। आखिरकार उन्होंने स्वयं को कृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिया। घोषणा कर दी कि मेरा भाई–बन्धु कोई नहीं है। मेरा किसी व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है–

"म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरा णां कूयां।
दूसरां णां कूयां साधां सकल लोक जूयां।
भाया छांड्यां, बन्धा छांड्यां छांड्यां संगा सूयां।"

अब वे साधुओं के साथ बैठकर सत्संग करने लगी. मंदिर जाने लगी व भजन–कीर्तन करने लगी। उन्होंने 'पग बांध घूंघर्यां पाच्यांरी' कहकर कृष्ण भक्ति में नाचने का उद्घोष कर दिया। अंततः उन्होंने गृह त्याग दिया। बुद्ध एवं महावीर स्वामी की तरह वे घर छोड़कर किन्हीं दार्शनिक प्रश्नों की खोज नहीं करना चाहती थीं बल्कि जीवन को पूर्णतः जीना चाहती थीं। अगर उन्हें सिर्फ भक्ति करनी होती तो वे राजमहल में रहकर भी भक्ति कर सकती थी। उनके स्वजनों को भी घर के भीतर रहकर उनके भक्तिन होने से क्यों ऐतराज होता. परन्तु वे स्त्री पराधीनता को चुनौती देना चाहती थीं। तत्कालीन समय में स्त्री न तो सन्यास लेने और न ही तीर्थाटन करने के लिए स्वतंत्र थी। पहली बार मीरा ने इस रूढि पर प्रहार किया। गृह त्याग के बाद भी मीरा का संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। उन्हें पुरुष भक्तों का अनेक प्रकार से विरोध झेलना पड़ा। जिन साधु–संतों की दृष्टि में 'नारी मात्र माया थी', उस पर मीरा ने कुशलता से विजय प्राप्त की। वृंदावन में जब वे चौतन्य महाप्रभु के शिष्य जीव गोस्वामी से मिलने गयी तो स्त्री कहकर उनकी उपेक्षा की गयी। इससे भक्ति क्षेत्र में व्यापक पुरुष–प्रधानता का पता चलता है। लेकिन मीरा ने भी उत्तर में कह भेजा–'कि वृंदावन में कृ श्ण के अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष है, बाकी सब तो स्त्री है। वस्तुतः जीव गोस्वामी निरुत्तर होकर स्वयं मीरा से भेट करने आए। ऐसी ही एक ओर जश्रुति के अनुसार एक ढोंगी साधु मीरा से मिला। उसने कहा कि 'कृष्ण के निर्देशानुसार आप मेरे साथ सम्बन्ध स्थापित करें इस अपमान को चुप रहकर सहने के स्थान पर मीरा ने साधु का स्वागत किया और कहा कि 'पहले आप भोजन कर लीजिए, इतने मैं सेज लगाती हूँ। इस बात पर साधु बहुत शर्मिंदा हुआ और मीरा से भक्ति की सही राह दिखाने के लिए प्रार्थना की।

इस प्रकार मीराबाई ने मध्यकालीन समय में राजसत्ता व पितृसत्ता के विरुध जाने का साहस किया. तमाम वर्जनाओं, रूढियों एवं कुरीतियों को तोड़ा। उन्होंने किसी पुरुष के संरक्षण के बिना स्वयं अपने जीवन को दिशा प्रदान की। वर्तमान में जब स्त्री–विमर्श इतना आगे बढ़ चुका है, तब भी मीरा के काव्य को कृष्ण–भक्ति एवं विरह–वेदना से ही जोड़कर देखा जाना ठीक नहीं है। उनके काव्य में स्त्रियों की आशा–आकांक्षा और व्यथा का स्वर तो है ही, लेकिन साथ ही नारी विद्रोह भी स्पष्टतः ध्वनित हुआ है। पर आज भी ज्यादातर आलोचक उनके पदों को उनके निजी जीवन का ही सार मानते हैं। माना कि मीरा का सारा काव्य उनकी आत्माभिव्यक्ति ही है। उन्होंने जो दुःख–दर्द, पारिवारिक व सामाजिक उपेक्षा झेली, जो अनेक यन्त्रणाएँ सही उसी को ही उन्होंने प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. 'त्रिपाठी विश्वनाथ, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ–69
2. पाण्डेय मैनेजर, पल्लव (संपादक), 'मीरा की कविता और मुक्ति की चेतना', मीरारू एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन पंचकूला, प्रथम संस्करण 2007
3. चोपड़ा सुदर्शन (संपादक), भक्त कवयित्रीरू मीरा, हिन्दी पॉकेट बुक्स दिल्ली, संस्करण 2002
4. त्रिपाठी विश्वनाथ, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ–104